

समर्थ भारत के लिए पं० दीन दयाल उपाध्याय का चिन्तन

डॉ० राज नारायण शुक्ल

एस. डी. कालिज, गाजियाबाद

सारांश

पं० दीन दयाल उपाध्याय भारत के ऐसे राजनैतिक नेता रहे हैं। जिन्होंने कभी अपने पद, और यश के लिए राजनीति नहीं की। उन्होंने भारत के सम्पूर्ण समाज की चिन्ता की। गरीब, अमीर, ब्राह्मण, दलित, उत्तर, दक्षिण सभी जन उनके लिए उनके प्रिय भारतवासी हैं। वह चाहते थे कि उनका राष्ट्र हर प्रकार से समर्थ हो, समृद्ध हो। वह जानते थे कि जब तक भारत में एक भी गरीब रहेगा भारत खुशहाल नहीं रह पाएगा। इसीलिए भारत के विकास का मॉडल क्या हो उन्होंने इसका विचार किया। पूंजीवादी व्यवस्था में संसाधनों का अधिकाधिक उपयोग और शोषण की प्रमुख रखा है, गरीब अमीर की अन्तहीन खाई है। ऐसे में समग्र विकास कैसे सम्भव है? समाजवादी अर्थ व्यवस्था में संसाधनों और व्यक्ति दोनों पर शासन का अधिकार हो जाता है। व्यक्ति की निजी रूचि उनके कौशल का हास होने लगता है। व्यक्ति का स्वतंत्र रूप से उन्नयन वहाँ सम्भव नहीं, नेहरू जी ने दोनों को मिलाकर नेहरूवियन मॉडल दे दिया पर उसका भी परिणाम वही हुआ जो दोनों व्यवस्थाओं का अलग-अलग होता है। दीनदयाल जी ने भारतीय समाज परम्परा पर आधारित एकात्म मानववाद का विचार दिया। जो प्राचीन वैदिक विचार से तथा महात्मा गांधी के स्वदेशी और ग्राम स्वराज के विचार से प्रेरित था। उनका मानना है कि भारतीय अर्थ-विचार ही मानव का समग्र विकास करने में समर्थ है।

महत्वपूर्ण शब्द :- विकासशील, संसाधन, गरीबी, पं० दीनदयाल उपाध्याय, पूंजीवाद, समाजवाद, शोषण, सांस्कृतिक

शोधपत्र का संक्षिप्त
विवरण इस प्रकार है:

**डॉ० राज नारायण
शुक्ल**, “समर्थ भारत के
लिए पं० दीन दयाल
उपाध्याय का चिन्तन”,
RJPP 2017, Vol. 15,
No.2, pp. 99-104
[http://anubooks.com/
?page_id=2004](http://anubooks.com/?page_id=2004)
Article No. 14(RP563)

प्रस्तावना

पं० दीन दयाल जी का स्मरण आते ही सम्पूर्णभारत का चित्र मेरे सन्मुख आ जाता है एक ऐसे भारत का जो सर्वतोन्मुखी विकासशील है जहाँ कश्मीर से कन्या कुमारी तक, असम से द्वारका तक सर्वत्र खुशहाली और हरियाली है। एक ऐसे भारत का चित्र बरबस ही आखों के सन्मुख उभरता है जो विकसित होने के बाद भी विकासशील हो जिसका विकास कभी अवरुद्ध न होता हो, क्योंकि पं० दीनदयाल उपाध्याय के विकासकी परिकल्पना केवल भौतिक समृद्धि ही नहीं अपितु समग्र विकासकी है जहाँ मनुष्य अपने समग्र रूप में विकसित हो, समाज अपने समग्र रूपमें अग्रसित हो रहा हो, राष्ट्र अपने समग्र रूप में फलित हो रहा हो। जहाँ गरीब न हो गरीबी न हो, किसी भी समाज के लिये।

विकासका एकांगी मानक तो भारत में कभी रहा ही नहीं। मनुष्य के जीवन का ध्येय क्या केवल भौतिक सुखको प्राप्त करना है? क्या वह भौतिक संसाधन जुटाना और उनका जीवन भर उपयोग करना चाहता है? पाश्चात्य विचार तो कदाचित्त यही है। परन्तु भारतीय विचार ऐसा नहीं मानता। हमारे यहाँ चार पुरुषार्थ माने गए हैं और उनमें मोक्ष की परिकल्पना अन्तिम है। यह जीवन को भली प्रकार जीने के बाद का अन्तिम सोपान है। परन्तु जीवन जीते हुए भी हमारा जीवन किस प्रकार का होना चाहिए, ऐसे निर्देशों से हमारे पुराण, स्मृतियाँ, वेद भरे पड़े हैं। हमारे यहाँ सांस्कृतिक जीवन मूल्यों का विवेचन किया गया है। हमें उचित प्रकार से जीवन यापन की सलाह दी गयी है निश्चित रूपसे जिन में नैतिकता और आदर्श ही सर्वोपरि है। हमारे यहाँ गरीबी को पाप माना गया। गोदान में मुंशी प्रेमचन्द जहाँ इसी बात को रेखांकित करते हैं, वहीं कबीर भी कहते हैं :

ना कुछ देखा ध्यान में ना कुछ देखा पोथी में

कहत कबीर सुनो भई साधो जो देखा दो रोटी में

अर्थात् यद्यपि भारत में भौतिक समृद्धि ही मनुष्य का अन्तिम उद्देश्य नहीं है परन्तु जीवन यापन की उचित और पर्याप्त व्यवस्था के विचार का हमने कभी तिरस्कार नहीं किया अपितु यह हमारे प्रारम्भिक आधार है। हमने जब पुरुषार्थ चतुष्टय के विचार को स्वीकार किया तभी हमने अर्थ को दूसरा स्थान दिया। (धर्म, अर्थ, काम मोक्ष) और पहला धर्म को। अर्थात् धर्मपूर्वक धन कमाने की प्रेरणा हमारे यहाँ प्रमुख रही। महाभारत में स्वयं महर्षि व्यास कहते हैं:-

उर्ध्वबाहुर्विरोमिष न च कश्चिच्छणोतिमाम्।

धर्मादर्थश्च कामश्च स धर्मः किं न सेव्यते ॥

अर्थात् मेरे हाथ उठाकर कहने पर भी लोग धर्मपूर्वक अर्थ एवं काम का सेवन क्यों नहीं करते।

गरीबी को दूर हटाने का पं० दीनदयाल उपाध्याय का रास्ता यही है। उनका सपना है कि भारत में कोई गरीब न रहे। हमारे द्वारा अर्जित किए गये संसाधनों का बराबर हिस्सा समाज के अन्तिम गरीब और वंचित तबके तक पहुँचना चाहिए अन्यथा हमारा विकास अधूरा है। विकास के सभी दावे, ढकोसले और खोखले साबित होंगे। आखिर ये कैसे सम्भव है कि हमारे शरीर का

एक हिस्सा मोटा होता जाये और दूसरा कोई हिस्सा पतला होते होते बेकार हो जाए तो क्या हम उसे एक स्वस्थ शरीर कहेगें? और क्या हम स्वस्थ रह पायेगें? एक स्वस्थ व्यक्ति के लिये शरीर के सभी अंगों का समुचित विकास जरूरी है। वैसे ही एक स्वस्थ समाज के लिए, एक सबल राष्ट्र के लिए समाज के सभी अंगों और तबके के लिए, उनका समुचित विकास आवश्यक है, देश के संसाधनों पर गरीब का भी उतना ही अधिकार है जितना कि एक सफल व्यक्ति का। फिर ये बात मायने नहीं रखती कि ये संसाधन किसने जुटाए हैं और जिसने जुटाए हैं वह अपने संसाधनों के उपयोग के लिए पूर्ण स्वतंत्र है। यह पूंजीवादी विचार है जिसने विश्व में एक तरफ कुछ व्यक्तियों के पास पूंजी का पहाड खड़ा किया वहीं एक बड़ी आबादी गरीबी रेखा से नीचे जीवन व्यतीत करने के लिए विवश है। उसके पास जीवन के लिए आवश्यक मूलभूत सुविधाएं, पानी, बिजली, पोषणीय आहार, रहने की उचित जगह, दवाईयों इत्यादिके लिए भी अथक संघर्ष करना पडता है। और इसके बाद भी उनके लिए सामान्य जीवन एक दिवास्वप्न ही रहता है। पं. दीन दयाल उपाध्याय जी ने सामाजिक उत्थान के लिए एकात्म मानव दर्शन में जो विचार दिए उनका मूल हमें वेदों में मिल जाता है। जहाँ वेद बड़ी प्रमुखता से रहते हैं कि विकास किसी एक का नहीं अपितु सभी का। उनके मंत्र व्यक्तिगत उत्थान नहीं अपितु सभी के उत्थान की कामना करते हैं।

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनासि जानताम्।

देवाभागं यथापूर्वं संजानाना उपासते।।

समानोमंत्र समिति समानी समानं मनःसह चित्तमेषाम।

समानं मंत्रभिमंत्रयेवःसमानने वोहविषा जुहोमि।

समानी वआकृतिः समाना हृदयानि वः।

समानमस्तु वो मनोयथा वः सुसहासति ।।

इस प्रकार की वैदिक व्यवस्था के बीच हमारा समाज हजारों वर्षों तक अपने समाज का उन्नयन करता रहा। उसी के परिणाम स्वरूप मनुष्य की कामनाएं शान्त होते होते गौण हो चली। और भारतीय समाज अर्थोपार्जन से निजी आवश्यकतों की पूर्ति से उठकर धैर्यपूर्वक आगे बढ़ता हुआ मोक्ष के विचार तक पहुँच गया और एक समय ऐसा आया कि हजारों हजार सन्यासी ऋषि मुनि और उनके गृहस्थ अनुयायी मोक्ष साधना में रत रहने लगे।

स्वतंत्रता के बाद भारत की पुनर्रचना का अवसर जब हमारे हाथ आया तो उस समय देश की बागडोर पं० नेहरू के हाथ में थी। वो पूरी तरह पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के पोषक थे लेकिन रूस यात्रा से वहाँ के विकास ने उन्हें इतना चमत्कृत किया कि उन्होंने पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के साथ ही समाजवादी अर्थव्यवस्था को भी भारत के विकास का आधार बना दिया।

दुर्भाग्य से ये दोनों व्यवस्थाएं एकांगी साबित हुईं जहाँ पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में संसाधनों का अधिकाधिक उपयोग और प्राकृतिक संसाधनों का अन्धाधुन्ध शोषण हुआ जल्द ही उसके दुष्परिणाम भी सामने आने लगे। पर्यावरण पर काम करने वाली एक संस्था वर्ल्डवाच इन्स्टीट्यूट ने अपनी पुस्तक में लिखा:-

“अन्धाधुन्ध जंगल कटाई, भूमि का असीम कटान, ईंधन को व्यर्थ नष्ट करना, नदियों, सागरों तथा वातावरण में बढ़ता प्रदूषण आदि बातों द्वारा प्रकृति का विनाश भयानक गति से प्रारम्भ हुआ है। यह विनाश इसी प्रकार चलतारहा तो कुछ ही दशकों में यह पृथ्वी मानव जाति की धारणा के लिए आवश्यक क्षमता खो बैठेगी”।

प्रकृति के साधन सीमित हैं। परन्तु उसका सन्तुलनपरिवर्तन और नूतनता की प्रवृत्ति को बनाए रखता है। परन्तु पूंजीवादी व्यवस्था ने हमारी राक्षसी भूख को जागृत कर दिया। हम बिना सोचे समझे संसाधन को अन्धाधुन्ध जुटाने के लिये प्रकृति का दोहन नहीं शोषण कर रहे हैं। दीन दयाल जी कहते हैं “वास्तव में प्रकृति से हमें उतनी ही साधन सामग्री लेनी चाहिए और वह भी इस प्रकार लेनी चाहिए कि उसके कारण होने वाली क्षति को प्रकृति स्वयं अपने आप पूरा कर सकें। उदाहरण के लिए पेड़ से पत्ते तोड़ लेने के कारण कोई हानि नहीं होती, उल्टे लाभ ही होता है। किन्तु भूमि से अधिकतम उपज लेने के लिये लोग ऐसे प्रयोग कर रहे हैं जिनसे कुछ समय बाद भूमि की उत्पादन शक्ति समाप्त हो जायेगी। कारखानों के स्वामी यंत्रों की टूट-फूट, सुधार आदि के लिये कुछ मूल्यहास निधि का अलग से प्रबन्ध करके रखते हैं। किन्तु प्रकृति के इस कारखाने के लिए हम ऐसा कोई प्रबन्ध नहीं करते। यह कैसे चल सकता है? इस दृष्टि से विचार करने पर कहना पड़ेगा कि हमारी अर्थव्यवस्था का उद्देश्य असीम भोग न रहकर संयमित भोग ही होना चाहिए। प्रकृति का दोहन कर ही हम जी सकते हैं न कि उसका शोषण करके। एक ओर पूंजीवादी व्यवस्था साधनों का असीमित निर्माण करती है। उनके उपयोग के लिए लोगों को प्रेरित करती है। वहीं दूसरी ओर भावों को गिरने से रोकने के लिये तथा लाभ में होने वाली कटौती से बचने के लिए उन्हीं संसाधनों को निर्ममता से नष्ट कर देती है। पिछले वर्षों में अमेरिका से एक समाचार था कि दूध की अधिकता हो जाने के कारण वहाँ की लाखों गायों का वध कर दिया जायेगा। गेहूँ की अधिकता हो जाने पर उनमें गेहूँ समुद्र में फेंक दिया गया। यह भयानक असंतुलन पूंजीवादी व्यवस्था की देन है। वहीं समाजवाद का पूरा विचार ही वर्ग-संघर्ष पर आधारित है। वर्ग-संघर्ष क्यों? साधनों का उपयोग कौन करे? केवल पूंजीपति ही क्यों? श्रमिक वर्ग क्यों नहीं? जो साधनों का प्रत्यक्ष निर्माण करता है। यहाँ मार्क्स ने सीमित उपयोग की भारतीय अवधारणा को अनदेखा कर असीमित उपयोग की पूंजीवादी व्यवस्था को बनाए रखा, संघर्ष केवल साधनों पर अधिकार के लिये रहा। इस बात को दीन दयाल जी के शब्दों में कहें तो वे कहते हैं “आजकल यह नारा दिया जा रहा है कि कमाने वाला खायेगा”। सामान्यतः यह नारा कम्युनिस्ट दिया करते हैं, किन्तु पूंजीवादी भी इस नारे में निहित मूल सिद्धान्त से असहमत नहीं हैं। दोनों में झगडा इस बात का है कि इस कमाई में बड़ा भाग किसका होगा। पूंजीवादी पूंजी तथा औद्योगिक साहस को अधिक महत्व देते हैं अतः उनका मानना है कि कमाई में उनका बड़ा भाग होना चाहिए। इसके विपरीत कम्युनिस्ट मानते हैं कि कामगार ही सम्पत्ति का निर्माता है और इसलिये सम्पत्ति पर सच्चा अधिकार उसी का है। किन्तु ये दोनों विचार उचित नहीं हैं। वास्तव में नारा तो यह होना चाहिए कि ‘कमाने वाला खिलायेगा’ और जो जन्मा है वह खायेगा।’ कारण खाने का अधिकार जन्मते ही प्राप्त होता है। कमाने की योग्यता शिक्षण से आती है। समाज में

उन लोगों को भी खिलाना होता है जो कमाते नहीं। बच्चे, बूढ़े, बीमार, अपाहिज, सबकी चिन्ता समाज को करनी पड़ती है। प्रत्येक समाज यह कर्त्तव्य करता रहता है। इस कर्त्तव्य को निभाने की क्षमता उत्पन्न करना ही अर्थव्यवस्था का काम है”।

वह अथर्ववेद का उदाहरण देते हुए कहते हैं— शत हस्त समाहर सहस्र हस्त विकिर’ अर्थात् सैकड़ों हाथों से उत्पादन करो और हजारों हाथों से उसे बाटों।

यही कारण है कि वैदिक भारत या प्राचीन भारत में गरीबी से किसी ने आत्महत्या नहीं की, भूख से कोई मरा नहीं, अकाल की स्थिति में भी समाज ने आगे आकर स्थिति तुरन्त संभाली, गरीबी और भूख से कोई मरे नहीं, इस स्थिति से बचने के लिए समाज ने कई प्रयोग किए। हमारे यहाँ ग्राम स्वराज्य की जो परिकल्पना रही है वह भूख और गरीबी से लड़ने का अभेद्य कवच रही। गाँव में गैर खेतिहर वर्ग, जुलाहा, मल्लाह, नाई, लुहार, जमादार, मिस्त्री इत्यादि जो भी तकनीकी और गैर तकनीकी काम करने वाला वर्ग था निःसंकोच वर्षभर किसानों के यहाँ बिना नकद मुद्रा के काम करता था। बदले में पैदा हुई फसल से इन सबको उनका निश्चित हिस्सा दे दिया जाता था। विवाह आदि उत्सवों में उन्हें कपड़े बर्तन तथा खाने की सामग्री भी पर्याप्त मिल जाती थी। समाज के सबसे सम्मानित वर्ग ब्राह्मण और सन्यासियों ने तो अपने लिए भिक्षा लेकर उदर पूर्ति की व्यवस्था अपना ली थी। इस सबमें चिन्तन यही था कि कोई गरीब न रहे। क्योंकि हमारा मानना रहा है— ‘बुभुक्षितं किं न करोति पापम’ अर्थात् भूखा व्यक्ति कोई भी पाप कर सकता है। अगर इसे रोकना है तो ये समाज की जिम्मेदारी है। कि कोई भूखा न रहे। इस समस्या के समाधान के लिये न तो पूंजीवाद उपयुक्त है न ही साम्यवाद। पूंजीवाद जहाँ गरीबी-अमीरी की खाई बढ़ाता है वहीं साम्यवाद व्यक्ति के निजी कौशल, उसकी रुचि आदि का क्षरण कर उसे निकम्मा बनाता है।

पं. दीन दयाल उपाध्याय ने भारत की गरीबी को निकटता से देखा। उन्होंने देश को समझने के लिए पूरे देश का दौरा किया। और गरीबी के कारण मनुष्य की भयानक पीड़ा और छटपटाहट को महसूस किया उन्होंने देखा कि भारत के बड़े वर्ग के पास तन ढकने को पर्याप्त वस्त्र नहीं हैं, कहीं कहीं तो घर की महिला के पास केवल एक ही वस्त्र था जो फटा हुआ था। खाने के लिए तीन समय का तो क्या दो जून का भी भोजन नहीं, कहीं तो एक बार ही भरपेट भोजन मुश्किल। इस भरपेट भोजन में चावल के साथ अगर नमक मिल जाए तो ये अपना सौभाग्य मानते थे। रहने के लिए कच्ची झोपड़ी, पीने के पानी के लिए कड़ा संघर्ष। दीन दयाल जी का हृदय इन सबको देखकर विचलित हो जाता था। उनकी दृष्टि में अर्थव्यवस्था नेहरू की तरह बड़े बड़े कारखाने, शानदार ढांचे खड़े करने में अपने कर्त्तव्य की इतिश्री मान लेना नहीं था। बल्कि भारत के इन करोड़ों अभागों के मुँह में निवाला पहुँचाने का था। जीवन की मूलभूत सुविधाएं मुहैया कराना था।

भारत की इस स्थिति से हमेशा यहाँ के महापुरुष चाहे वो धार्मिक विचार रखने वाले रहे हों या गैर राजनैतिकचिन्तिक चिन्तित रहें स्वामी विवेकानन्द ने तो तमाम सन्यासियों को भी दिशा देते हुए कहा कि ये समय हिमालय की कन्दराओं में जाकर मोक्ष प्राप्त करने का नहीं अपितु

दरिद्रनारायण की सेवा करने का है। मुंशी प्रेमचन्द का साहित्य तो इन्हीं गरीबों की त्रासदी की महागाथा है। कबीर का विद्रोही स्वर भी तो यही से दिशा पाता है। फिर हम कैसे स्वर्ण मुकुट के नीचे सिसकते भारत की तस्वीर में रंग भर सकते हैं। हमें एक ऐसा भारत बनाना था जहाँ

“सर्वे भवन्तु सुखिना, सर्वे सन्तु निरामया।”

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखभाग् भवेत् ॥

का दृश्य साकार हो, और इसीलिये हमें पं० दीनदयाल उपाध्याय के आर्थिक चिन्तन को, एकात्म मानववाद को देश की व्यवस्था का आधार बनाना पड़ेगा। ऐसा एक अवसर नेहरू को भी मिला था जब उनके प्रेरणा स्रोत महात्मा गांधी ने भारत के भविष्य के लिए उन्हें ‘ग्राम स्वराज’ और ‘स्वदेशी’ को भारत की अर्थव्यवस्था का आधार बनाने की सलाह दी थी। पर नेहरू ने उसे निर्ममता से ठुकरा दिया। तथा पूंजीवादी एवं समाजवादी व्यवस्था का मिला जुला गडबडझाला देश पर थोप दिया। अगर हम चाणक्य के, गांधी के, लोहिया के, पं० दीनदयाल उपाध्याय के बताए रास्ते पर चले होते तो यह देश दुनिया का महानतम समृद्ध और सांस्कृतिक राष्ट्र होता। पर हम आज न तो समृद्ध हैं और न सांस्कृतिक ‘माया मिली न राम’। हमें पुनः अवसर मिला है। दीनदयाल उपाध्याय जी के बताए मार्ग पर चलकर अपने राष्ट्र को महान बनाने का, एक ऐसा राष्ट्र बनाने का, जिसके बारे में गोस्वामी तुलसीदास जी ने लिखा है—

‘नहि दरिद्र कोउ दुःखी न दीना। नहि कोउ अबुध न लच्छन हीना।

अल्प मृत्यु नहि कवनिउ पीरा। सब सुंदर सब बिरूज सरीरा ॥